# इकाई 1 वैदिककालीन वास्तुशास्त्र

**इकाई की रूपरेखा**

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 वास्तुशास्त्र की पृष्ठभूमि

 1.3.1 वास्तुशास्त्र का अर्थ एवम् उत्पत्ति

 1.3.2 वैदिककालीन वास्तुशास्त्र

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 बोधप्रश्न/अभ्यास प्रश्न

1.7 सहायक उपयोगी पुस्तकें

## 1.1 उद्देश्य

वैदिककालीन वास्तुशास्त्र नामक इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप :

- वास्तुशास्त्र की पृष्ठभूमि बता सकेंगे
- वैदिककालीन वास्तुशास्त्र को जानने के लिए वास्तुशास्त्र का अर्थ और उसकी उत्पत्ति बताएंगे।
- वास्तुशास्त्र का अर्थ और उसकी उत्पत्ति के सन्दर्भ में विभिन्न मतों का उल्लेख कर सकेंगे।
- वैदिककालीन वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों और तथ्यों की व्याख्या भी उपस्थित कर पाएंगे।
- वास्तुशास्त्र की वैदिक अवधारणा के विषय में उल्लेख करने में सक्षम हो जाएंगे।

## 1.2 प्रस्तावना

वास्तु का समान्य अर्थ निवास से है, चूंकि जब भी वास्तु विषयक चर्चा होगी तो कहीं न कहीं आवास को लेकर निर्माण को लेकर होगी। वास्तु में गृहादि ही नहीं समाहित हैं अपितु वह चाहे पर्णकुटी हो, महल हो, सार्वजनिक भवन हो, आद्यौगिक भवन हो, देवालय हो, जलाशय हो, अथवा कोई सरकारी कार्यलय या विद्यालय महाविद्यालय या विश्वविद्यालय ही क्यों न हो, ये सभी भवन वास्तु कहलाते हैं। वास्तु का सामान्य अर्थ है निवास। सकारात्मक मानसिकता के साथ कार्य करने हेतु वास्तुशास्त्र के मौलिक सिद्धान्तों के अनुरूप निर्माण करने पर निश्चित रूप से मानसिक सन्तुलन सकारात्मकता पूर्ण रहेगा। प्राचीन भारतीय संस्कृति इस विषय को लेकर पूर्वकाल में अधिक सम्पन्न थी। उस काल खण्ड में राष्ट्र सर्वोपरि धर्म था। इसलिए राष्ट्र निर्माण के उद्देश्य से तत्कालीन भवन निर्माणकला वैज्ञानिक आधारित थी। चूंकि मानव राष्ट्र में रहते हुए जिस मानसिकता के साथ रहकर निवास करेगा उसी मानसिकता के

वशीभूत होकर उसका आचार विचार तथा व्यवहार होगा। राष्ट्र हित एवं राष्ट्रकल्याण की चर्चा, परिचर्चा एवं मानसिकता कैसे बनी रहे इसके लिए वास्तुशास्त्र के मौलिक सिद्धान्तों के अनुरूप वास्तु निर्माण हो तो निश्चित रूप से हम कायिक, वाचिक तथा मानसिकरूप से सम्पन्न होंगे। अतः हमें ऋषिप्रणीत जो वैज्ञानिक आघारित भवन कला का ज्ञान विज्ञान प्राचीन भारतीय ऋषियों, महर्षियों एवं अठारह आचार्य, प्रमुख रूप से वास्तुशास्त्रविद् हुए। उनके नीति, नियमों उनके द्वारा निर्मित सिद्धान्तों को आधार बनाकर गृहनिर्माण करना चाहिए। उनके बताये सिद्धान्तों का अनुपालन करना, किस प्रकार से किस दिशा में कौन सा भवन निर्माण उपयुक्त होगा, इन समस्त विषयों का अध्ययन हम इस इकाई के माध्यम से करेंगे।

## 1.3 वास्तुशास्त्र की पृष्ठभूमि

संसार की प्राचीन ज्ञानराशि के रूप में विद्यमान समस्त आधुनिक दृश्य एवं अदृश्य अलौकिक ज्ञान–विज्ञान वेदों में निहित है। वैदिक वाङ्मय भारतीय जीवन दर्शन की सांस्कृतिक विरासत के रूप में अलौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान वह वैदिककालीन हो अथवा वर्तमानकालीन आधारभूत विधायें प्रमाणस्वरूप वेदो में निहित है। लेकिन प्राचीन ज्ञान–विज्ञान को प्राप्त करने की सामर्थ्य केवल शब्द को ब्रह्म मानने वाले विचारधारा से सम्बन्ध रखने वाले, एवं शब्द ही ब्रह्म है और ब्रह्मज्ञान ही परमतत्व है इस प्रकार के निष्ठावान एवं जिज्ञासु ही उस दिव्य अलौकिक ज्ञान को प्राप्त कर सकते है। भारतीय जनमानस अतीत एवं पुराकाल से ही समृद्ध एवं उन्नत रहा है, और आज वर्तमानकालिक ज्ञान–विज्ञान कितना ही समृद्ध क्यों न हो लेकिन भविष्य की चुनौतियाँ आधार रहित ज्ञान के बिना सफल नहीं हो सकती अतः भविष्य कैसे उज्ज्वल हो इस हेतु से वेद के ज्ञान से रहित होकर हम समुन्नत नहीं हो सकते। चूंकि वैदिककालीन संस्कृति एंव तत्कालीन चिन्तनधारा बहुमुखी एवं विविधरूपिणी रही है। प्रत्येक मानवीय क्षेत्र में वह जनकल्याण के विषय में हो या युद्ध अथवा शान्ति की प्रत्येक कला का विषय हो, राजनीति एवं शासनव्यवस्था की स्थिति हो, साहित्य एवं संगीत, नृत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला में वास्तुविद्या अथवा स्थापत्य के निर्माण विधान में भारतीय चिन्तनधारा विश्वकल्याण की भावना से ओत–प्रोत होती हुए विकसित हुई है। भारतीय चिन्तनधारा **"सर्वेभवन्तु सुखिनः"** जन भावना के साथ विकसित होती हुई सर्वविध कल्याण की कामना के साथ आज भी परिवर्धित एवं संरक्षित होती हुई विकाससील है। वैदिक चिन्तनधारा के अनुसार इस संसार में यत्र–तत्र–सर्वत्र ईश्वर की सत्ता दृश्य एवं अदृश्य रूप से विद्यमान है। दृश्यरूप में ईश्वर ने अपने प्रतिबिम्ब के रूप मनुष्य को विवेकशील एवं बुद्धिसम्पन तथा परमवैभव से भी सम्पन्नता दी है। वेदों में निहित ज्ञान के आधारभूत ईश्वर ने मानव को आधुनिक उपभोगवादी एवं सर्वविधरूपेण सुविधा एवं सुरक्षा जीवन पद्धति के असीम उत्कर्ष की प्राप्ति हो, इस दृष्टिगत वैदिक विज्ञान ने अनेकानेक साधनभूत मन्त्र–यन्त्र तथा तन्त्र उपलब्ध कराये हैं। मानव जीवन किस प्रकार से सुखमय एवं समृद्धमय हो, तथा समृद्धि के साथ–साथ शान्तिमय हो इसके निमित्त जिन–जिन महत्वपूर्ण उपकरणों की आवश्यकता होती है उनमें सर्वप्रथम निवास हेतु गृहनिर्माण परम आवश्यक है। इस धरती पर उत्पन्न छोटे से छोटे जीव–जन्तु एवं जड़ चेतन, पादप, कीट, पतङ्ग से लेकर विवेकशील प्राणी तक प्रकृति के अटल नियमों में प्रतिबद्ध होकर दैहिक, दैविक एवं भौतिक ताप की निवृत्ति और भौतिक एवं लौकिक सुखशान्ति समृद्धि के लिए जिन संसाधनों के हेतु से सदा प्रयत्नशील रहते हैं इन बहुत सी सुख–सुविधाओं, वह भौतिक हो या लौकिक हों, साधना के द्वारा इस संसार की लीला को वशीभूत करने के हेतु से ही संग्रहीत करने की भावना हो, लेकिन सतत्

प्रयत्नशील रहते हैं। उपर्युक्त समस्या सुख के साधनभूत उन समस्त उपकरणों को संग्रहीत करने के लिए एक मात्र साधन है गृहनिर्माण, ऋषियों, महर्षियों एवं पूर्व आचार्यों द्वारा संग्रहीत आवास एवं गृहनिर्माण से सम्बन्धित विधियां उपविधियां तथा नियमों का भाण्डार एवं वैदिक कालीन संस्कृति में समुन्नत वैज्ञानिक पद्धति भारत ही नहीं, अपितु भरतेत्तर देशों में भी उसका प्रचार–प्रसार है। यदि वैदिककालीन संस्कृति पर दृष्टिपात करें तो सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज भी गृह निर्माण की जिस विधा का प्रयोग कर रहे हैं और जिन–जिन भवनों का निर्माण प्राचीन भारतीय ऋषि पद्धति पर आधारित हुआ है वह भवन आज भी सदियों पूर्व निर्मित होने पर भी ज्यों के त्यों भूमण्डल पर स्थित है। किसी भी प्रकार की आपदा वह चाहे लौकिक हो या पारलौकिक हो या प्राकृतिक हो उनमें आज भी कोई इस प्रकार की विसंगति दृष्टि गोचर नहीं दिखाई पडती है। गृह निर्माण उपर्युक्त तकनीक प्राचीन भारतीय वैदिक वाङ्मय में निहित गृहनिर्माण पद्धति के सापेक्ष होने का ही सुखद परिणाम है। यही कारण है कि जीव अपनी–आपनी सामर्थ्य के अनुसार अपने लिए गृहनिर्माण कर समस्त भौतिक एवं अध्यात्मिक सुखों को भोगता हुआ दिखाई पड़ता है। परन्तु मानव जाति चौरासी लाख योनियों में सर्वश्रेष्ठ श्रेणी में है।

संसार में प्रत्येक जीवधारी अपनी–आपनी सामर्थ्य के अनुसार अपनी–अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार निवास का निर्माण करता है। यह आवास किस प्रकार का हो, उसकी व्यवस्था कैसे बने। इस विषयक समस्त ज्ञान–विज्ञान वैदिक वाङ्मय में निहित है। आज आधुनिक काल में जिस शास्त्र का नामकरण वास्तुविद्या के नाम से प्रसिद्ध है। वैदिक वाङ्मय में इसे स्थापत्यवेद के नाम से जाना जाता था। चूंकि मानव जाति सर्वश्रेष्ठ होने के फलस्वरूप हमारे ऋर्षियों, महषियों द्वारा चिन्तन एवं अनुसंधान के उपरान्त इस धरा पर किस प्रकार से मानव एवं मानवेत्तर जाति प्रकृति की गोद में प्राकृतिक वातावरण को साथ लेते हुए अपना सुखमय एवं नीरोग होकर जीवन यापन करे, इस दृष्टि से गृहनिर्माण के लिए स्थापत्यवेद, जीवन जीने के लिए आयुर्विज्ञान, मनोरञ्जन के लिए सामवेद मे संगीत विज्ञान, व्यवसाय, सम्पन्नता समृद्धि एवं सामाजिक संगठन के लिए अर्थविज्ञान से जुडे चार अलग अलग उपवेद स्थापित किये हैं। जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद, अथर्ववेद का स्थापत्यवेद है। वस्तुतः भारतीय वास्तुशास्त्र का उद्‌गम स्थल विश्व की प्राचीनतम् रचना ऋकसंहिता से हुआ है। ऋग्वेदकाल में वास्तुविज्ञान पूर्णरूप से विकसित स्वरूप में था। ऋग्वेद में दुर्ग निर्माण, प्रासाद निर्माणविधि, विभिन्न वर्णानुक्रम में भवनकला के विषय में विस्तृत वर्णन उपलब्ध है।

वैदिक वाङ्मय में सुन्दर हवेलियों एवं प्रासादों का भी उल्लेख किया गया है जिनको निर्मित करने में लकड़ी का प्रयोग किया जाता था, और यह लकड़ी का प्रयोग भवन निर्माण बहुतायत में होता था। इस प्रकार के भवन जिनमें लकड़ी एवं पत्थर का प्रयोग होता है उन भवनों को आज भी देखा जा सकता है। यह भवन आवास की दृष्टि से प्रकृति के अनुरूप होते है। सर्द ऋतु में इन भवनों के अन्दर  का तापमान उष्ण तथा ग्रीष्म ऋतु में शीतल रहता है। ऐसा भी उल्लेख प्राप्त होता है कि मित्र तथा वरूण के पास एक ऐसा प्रासाद था, जिसमें एक हजार स्तम्भ थे। ऋग्वेद 7/3/7 में लौहदुर्ग तथा नगरों का भी उल्लेख किया गया है। विविध प्रकार के स्थानों जैसे गृह हर्म्य आदि का वर्णन ऋग्वेद के 3/53/6 तथा ऋग्वेद के ही 7/56/16 में उपलब्ध होता है। इस प्रकार से प्राचीन वैदिक वाङ्मय वर्तमानकाल की अपेक्षा कही अधिक विकसित था।

### 1.3.1 वास्तुशास्त्र का अर्थ एवम् उत्पत्ति

अन्धकासुर नामक दैत्य के साथ भगवान शंकर के मलयुद्ध के दौरान शंकर जी के मस्तक से पसीने की बूंदे गिरी, और उनसे एक भयंकर भयावह प्राणी का प्रादुर्भाव हुआ। उसने अन्धकगणों का रक्तपान किया, परन्तु वह उससे तृप्त न होकर सम्पूर्ण सृष्टि को भक्षण करने के लिए प्रवृत हुआ। इसके पश्चात शंकरादि समस्त देवतागणों ने उसे पकड़ कर औधें मुंह(उलटा) लेटा दिया। और वास्तुपुरूष की संज्ञा से उदबोधित किया और जिस देवता ने जहां से जिस दिशा से उसको पकड़ा था उसी देवता ने उस अंग में वास किया और वही विशालकाय पुरूष वास्तुपुरूष के नाम से विख्यात हुआ। इसके विषय में आधुनिक विद्वानों द्वारा रचित पुस्तकों में भी कुछ प्रमाण उपलब्ध है, जो पुराण आदि शास्त्रों से ही **एकत्रित** किये गये है।

वास्तुशास्त्र का स्वरूप एवं उत्पत्ति–ः

**पुरा कृतयुगे ह्मासीन्महद्‌भूतं समुत्थितम्।**

**व्याप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः।।**
**तद्‌दृष्टवा विस्यमं देवा गताः सेन्द्रा भयावृताः।**

**ततस्ते क्रोधसन्तप्तैगृहीत्वा तमथासुरम्।।**
**विनिविक्षिप्तमधोवक्त्रं स्थितास्तत्रैव ते सुराः।**
**तभेव वास्तुपुरूषं ब्रह्मा कल्पितवान स्वयम्।।**

उपर्युक्त प्रमाणों के अनुसार स्पष्ट प्रतीत होता है कि वास्तुशास्त्र का वैदिक काल में जन्म हुआ, लेकिन इसका पूर्ण रूप से विकास आगम एवं पुराणकाल में हुआ, और महाभारत काल तक यह पूर्णरूप से विकसित हो चूका था।

वास्तुशास्त्र को प्रमुखरूप से ज्योतिष शास्त्र का संरक्षण प्राप्त है, क्योंकि ज्योतिषशास्त्र प्रायः दिग–देश–काल के सिद्धान्त पर कार्य करता है अतः उसमें भी सहिता भाग में वास्तु विद्या का वर्णन उपलब्ध होता है, वह चाहे नारद संहिता हो या बृहत्संहिता हो या अन्य कोई भी इसके प्रमाण प्रचुर मात्रा में संहिताओं में उपलब्ध हैं। भास्कराचार्य जी नें वेदों के छः अंग माने है जैसे व्याकरण, ज्योतिष निरूक्त, कल्प, शिक्षा एवं छन्द इन छः अंगों को ही वेदांग कहा गया है। लेकिन छः अंगों में भी ज्योतिष शास्त्र ने व्यक्ति के विविध पक्षों का सूक्ष्मातिसूक्ष्य रूप से विचार किया है, उसमें भी होरा एवं संहिता विभाग ने व्यक्ति के सुख दुख का व्यष्टिगत एवं समष्टिगत दृष्टि से विशेष विचार किया है। क्योंकि भारतीय संस्कृति में पुरूषार्थ चतुष्ट्य की बात कही गई है उसके लिए गृह का होना अति आवश्यक है अतः दूसरे के घर में किये गये श्रौत स्मार्त आदि समस्त शुभकार्य कभी भी फल को देने वाले नहीं होते अतः जीवन में व्यक्ति को जैसे–जैसे गृह–निर्माण आवश्य करना चाहिए। क्योंकि दूसरे के घर में किये गये सभी शुभ कार्य भूस्वामि को प्राप्त होते हैं। वैसे भी हमारे यहां पर गृह निर्माण के उत्तरोत्तर अनन्त पुण्य फल की प्राप्ति कही गई है। अर्थात् घास फूस से निर्मित घर निर्माण से करोड़ों गुणा फल एवं मिट्टी का घर निर्माण करने से दस करोड़ गुणा फल, ईंट का घर निमार्ण करने से सौ करोड़ गुणा फल और पत्थरों के द्वारा घर निर्माण करने से अनन्त पुण्य फल की प्राप्ति कही गई है। तथापि भविष्य पुराण में भी गृह की आवश्यकता पर बल दिया गया है। **"गृहस्थस्य क्रियाः सर्वाःन सिद्धयन्ति गृहं विना"** अतः गृह निर्माण हमारे जीवन का एक प्रमुख अंग है। वास्तुशास्त्र के क्षेत्र में

हमारे आचार्यो का विशेष योगदान रहा है। जिन्होनें इस शास्त्र को पल्लवित पुष्पित एवं सुरक्षित रखने में विशेष योगदान दिया है जिन्हें वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक के नाम से उपाधि प्राप्त है। वे मुख्यता मत्स्यपुराण के अनुसार निम्नलिखित हैं।

अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्; विशालाक्ष पुरन्दर नन्दीश, शौनक, गर्ग वासुदेव, अनिरूद्ध, शुक्र, बृहस्पति एवं अश्विनी कुमारों ने वास्तुशास्त्र के क्षेत्र में अह्म भूमिका निभाई है। उपर्युक्त आचार्यों में सभी के पूर्ण रूप से आज ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है परन्तु "मय" रचित "मयमतम्" एवं विश्वकर्मा रचित विश्वकर्मा प्रकाश आज भी उपलब्ध है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अनुसार यदि हम वास्तुशास्त्र के अतीत पर दृष्टि डालें तो असुरों में मय की अपनी एक प्रतिष्ठा थी और देवताओं में विश्वकर्मा जी की।

वैसे ही आज भी इस विद्या को तथाकथित लोगों के हाथों में देखा जा सकता है जिन्होंने धनलोलुपता के वशीभूत होकर आज इस विद्या को पुनः कटघरे में खड़ा कर दिया है। सैद्धान्तिक दृष्टि से देखा जाय तो इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब–2 धर्मशास्त्रों का तथाकथितों के द्वारा ह्रास किया गया तब–तब उनको शापित होना पडा है। इसी सन्दर्भ में ब्रह्मवैवर्त पुराण में विश्वकर्मा के पुत्रों को ब्रह्मा ने शाप से दग्ध किया था। **स्थापत्य शास्त्र मध्यकाल में** वास्तुशास्त्र के रूप में दृग्गोचर हुआ। वैदिक युग में घरों का निर्माण तक ही वास्तुशास्त्र सीमित था, परन्तु कालान्तर में शनैःशनैं इसका विकास हुआ और यह नगर–शहर–**हर्म्य**, एवं महानगरों के रूप में विकसित हुआ। धीरे–धीरे मूर्तिकला एवं चित्रकला भी इसके मुख्य अंग हो गये। भित्ति, प्रतिमाओं एवं चित्रकला भी वास्तुशास्त्र में परिणत हो गई। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण समराङगण सूत्रधार ग्रन्थ भोजदेव रचित आज भी उपलब्ध है जो इस बात की पुष्टि करता है। वास्तु–शिल्प एवं चित्रकला इसके तीन अंग है। "विश्वकर्माप्रकाश" और **मयमतम्** तथा अपराजित पृच्छा वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ माने जाते है।

उत्तरवर्ती काल में अनेक आचार्यों ने वास्तु शास्त्र के ऊपर स्वतन्त्र ग्रथों की रचना की है जिनमें कुछ प्रमुख है। यथा।– सगराङण सत्रधार, वास्तुराजवल्लभ, प्रासादमण्डन शिल्परत्न, वास्तुरत्नाकर, ज्योतिर्निबन्ध, मुहूर्तचिन्तामणि, बृहत्सहिता, **प्रमाणमञ्जरी,** बृहद्वास्तुमाला, वास्तुसार, एवं भारतीय वास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधारादि। वैदिक वाङ्मय में वास्तु का सामान्य अर्थ गृह, भवन, प्रासाद, दुर्ग इत्यादि से था, या फिर वास्तु वाङ्मय में वास्तु का सामान्य अर्थ है **"गृह निर्माण हेतु उपयुक्त भुखण्ड"**। वास्तु शब्द की उत्पत्ति "वस्" वासे धातु से हुई है।यह "वस्" धातु किसी एक स्थान में निवास करने से है उणादि सूत्र "वसेस्तुन" के अनुसार इसमें "तुन्" प्रत्यय लगाया गया है। प्रथम अक्षर 'व' के ह्रस्व 'अ' को दीर्घ 'आ' इसलिए किया गया है क्योंकि इस प्रत्यय को 'णित्' माना जाता है। "अगारे णिच्च" वास्तु का व्यत्पतिलभ्यार्थ है। **"वसन्त्यस्मिन्निितिवास्तुः"** अर्थात् वह भवन जिसमें मनुष्य निवास करते हों उसे वास्तु कहते हैं। वस्तुतः सम्पूर्ण भूखण्ड को वास्तु कहा जाता है ऐसा उपयुक्त नहीं है, चूंकि अनेकों ऐसे भूखण्ड हैं जिनमें निवास नहीं किया जाता और वास्तु के नियमानुसार ऐसे भूखण्ड का संस्कार नहीं किया जाता है वह भूखण्ड आवास की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। इसलिए वर्तमान कालखण्ड में वास्तु नियमानुसार नहीं बनाये गये भूखण्डों को वास्तु नहीं कहा जा सकता। चूंकि वास्तुसम्मत भूखण्ड के लिए समस्त वास्तु के नियमों का पालन करके उसकी वैज्ञानिकता [1] सिद्ध करने के बाद ही उसमें दुर्ग

1. शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरूक्तं च कल्प करौ।

निर्माण करना, मठ, मन्दिर, गुरूद्वारा प्रासाद, नगर, महलआदि का निर्माण किया जा सकता है। आचार्य चाणक्य जी ने वास्तुशब्द का प्रयोग विशाल अर्थ में अपने चाणक्य अर्थशास्त्र में किया है। उनके मतानुसार गृह, वाटिका उद्यान, बाग, बगीचा, आदि समस्त स्थलों पर मानव किसी न किसी स्वरूप में निवास करता है। इसलिए उनके अर्थ में सभी स्थल वास्तु के अन्तर्गत आते हैं। भारतीय संस्कृति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आधारभूत सिद्धान्त पर कार्य करती है। भारतीय संस्कृति धर्म के अनुसार अर्थ की उत्पत्ति हो अर्थात् सत्यनिष्ठा को आधार मानकर अर्थ की प्राप्ति करना और कामनापरक उपयुक्त योग्य संसाधनों का उपयोग करते हुए मोक्ष की कामना करना यह प्राप्ति ही भारतीय संस्कृति का प्रमुख उद्देश्य रहा है। इसी हेतु से वास्तुशास्त्र में वापी, कूप, तड़ाग, देवालय, पशुशालादि का निर्माण भी वास्तु के अन्तर्गत रखा गया है। चूंकि देवालय में मानव साधक के रूप में निवासित होता है। पशुशाला में अपने उपयोग के लिए पशुपालन के हेतु से उपयोग करना इत्यादि विशाल अर्थ में वास्तुशास्त्र को रखा गया है। यथा।–

**स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदम्।**
**जन्तुनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्।।**

**वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते।**
**गेहं पूर्वमुशन्ति तेन बिबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः।।**

यह देवशिल्पी विश्वकर्मा आदि द्वारा स्त्री, पुत्र, आदि के भोग, सुख, धर्म, काम को देने वाला प्राणियों के सुख का स्थान और सर्दी, वायु, गर्मी, आदि कष्टों से रक्षा करने वाला, 'गृह' ही है। विधिवत् गृहनिर्माण कर्ता बाबड़ी, देवालय आदि के निर्माण का पुण्य भी प्राप्त होता है। इसलिए पुण्य की प्राप्ति हेतु जीवन में एक बार गृहनिर्माण अवश्क करना चाहिए। देववास्तुशास्त्री विश्वकर्मा आदि द्वारा गृह निर्माण कें भी उत्तरोत्तर पुण्य फल प्राप्ति के विषय में कहा है। यथा–

**कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसङ्गुणम्।**
**ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्त फलं गृहे।।**

नूतन गृह निर्माण से पुण्य की प्राप्ति तो होती ही है इसके साथ–साथ यदि पुरातन वापी, कूप, तडाग, प्रासाद, भवनों का भी यदि जीर्णोद्धार यदि कोई करता है तो उसको भी पुण्यफल प्राप्त होता है। यथा–

**वापी–कूप तड़ागादि–प्रासाद–भवनानि च।**
**जीर्णान्युद्धरते यस्तु पुण्यमष्टगुणं लभेत्।।**

यहां तक कि वास्तु निर्माण के महत्व को विशिष्टता के साथ रखते हुए वास्तुशास्त्रियों द्वारा धर्मार्थ के उद्देश्य की प्रतिपूर्ति हेतु परगृह निवास फल को अर्थात् दूसरे के घर में बिना शुल्क दिये जो निवास करता है, तो उस भूमि एवं भवन पर निवास करते हुए

---

या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपाद्यद्वयं छन्द आधैबुधैः।।

2. परगेहकृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः।
निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमिशः फलमश्नुते।।

3. कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसङ्गुणम्।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं गेहे।।

श्रौत, स्मार्त आदि समस्त शुभकार्य करने पर उनका फल भूमिपति को प्राप्त होता है। उनका स्वयं के लिए पुण्यफल निष्फल बताया गया है। यथा–

**परगेहकृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः।**
**निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते।।**

वर्तमान में वास्तुकला का अर्थ गृह निर्माण कला हो गया इसके अनुसार वास्तुशास्त्र का एकमात्र प्रतिपाद्य विषय आवासीय एवं व्यवसायिक भवनों, देवमन्दिरों बांधो, सेतुओं, एवं तड़ागों अर्थात् प्रत्येक तरह के भवन, क्षेत्र, वाटिका, आदि रचना के सिद्धान्तो की प्रविधियों उपायों एवं साधनों की व्याख्या करना रह गया है। वास्तु के वैदिक देवता का नाम वास्तोष्पति है। वास्तोष्पति के विषय में ऋग्वेद में एक नहीं अपितु दो सूक्तों में वास्तु तथा भवन पर शासन करने वाले देवता वास्तोष्पति से जीवन में आने वाले दुःख दरिद्रता, रोग, शोक, आधि–व्याधि, भय, उपद्रव आदि के शमनार्थ एवं सुख–शान्ति, समृद्धि तथा भाग्य की अभिवृद्धि के हेतु से प्रार्थना की गई है।

**यथा।–** **ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशोऽअनमीवो भवानः।**
**यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भवद्विपदे शं चतुष्पदे।।**

**साहित्य के क्षेत्र में वास्तु विज्ञान।–** प्राचीन भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित जीवनोपयोगी, राष्ट्रोपयोगी सामग्री संस्कृत साहित्य में यत्र–तत्र इसलिए अलग–अलग विषयों एवं शास्त्रों मे उपलब्ध होती है। क्योंकि मानवीय जीवन का चरित्र साहित्य के द्वारा होता है, तथा जीवन मे उत्कृष्ट निर्माण सम्बन्धी क्रिया के द्योतक के रूप मे वास्तुशास्त्र सभ्य समाज एवं सभ्य जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। वास्तुशास्त्र के विषय में हमें यह ज्ञान संस्कृत साहित्य में हमें भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में पांच प्रकार से उपलब्ध होता है। जिसमें निम्नप्रकार से है। यथा।–

1. **वैदिकवाङ्मय में वास्तुशास्त्र।**
2. **पौराणिकसाहित्य में वास्तुविज्ञान।**
3. **प्राचीन काव्यग्रन्थों मे वास्तुशास्त्र।**
4. **प्राचीन वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ।**
5. **अर्वाचीन वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ।**

संस्कृत साहित्य में वास्तुविद्या एवं स्थापत्य कला का उल्लेख जिन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है, उनके विषय में निम्नलिखित ग्रन्थों के अध्ययन एवं अवलोकन के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है। वर्तमान काल खण्ड प्रत्येक विषय को प्रमाणिकता के तराजु पर तोलता है इसलिए प्रमाण के लिए आधार आवश्यक है। यथा

**वेद।–** 1) ऋग्वेद मे वास्तुविज्ञान 2) यजुर्वेद मे वास्तुशास्त्र 3) सामवेद में वास्तु 4) अथर्ववेद में वास्तुशास्त्र।

इसी प्रकार से आगम ग्रन्थों में भी वास्तुशास्त्र विषयगत साक्ष्य उपलब्ध होते हैं तथा–

1) कामिकागम में वास्तु 2) सुप्रभेदागम में वास्तु 3) वैश्वानरागम में वास्तुविज्ञान 4) करणागम में वास्तु 5) शैवागम में वस्तुविज्ञान 6) तन्त्र शास्त्रों में वास्तु 7) हयशीर्ष पञ्चरात्र में वास्तु विज्ञान।

उपर्युक्त वैदिक कालखण्ड में वास्तुशास्त्र का प्रचलन पूर्णरूप से था, इसलिए वर्तमान काल की अपेक्षा वह युग कहीं आज की अपेक्षा अत्यधिक समुन्नत था।

**पौराणिककाल में वास्तुविज्ञान**– पौराणिक काल में वास्तुशास्त्र पूर्णरूप से विकसित था। जिसका एक उदाहरण इस प्रकार भूसर्वेक्षण के आधार पर किया जा सकता है, कि आज भी पर्वतीय प्रदेशों एवं ग्रामीण परिवेश में नगरों और शहरों की अपेक्षा कहीं ज्यादा लोगों को परम्परागत गृहस्वामियों के माध्यम से वास्तु के विषय में जैसें नीवं खोदना, द्वारस्थापना, दिशा का ज्ञान, इत्यादि लगभग सभी गृह के भीतर होने वाली स्थापना के विषय में काफी अच्छा ज्ञान लोग रखते हैं। चूंकि पौराणिक काल कथा कहानियों वाला कालखण्ड रहा है इसलिए पौराणिक काल के अनन्तर भी वर्तमान काल तक वास्तुशास्त्र का ज्ञान लोगों में देखा जा सकता है। यदि हम गहराई पूर्वक अध्ययन करे तो पौराणिक काल मे लगभग अठारह पुराणों में से बारह पुराणों मे वास्तुविद्या का उल्लेख प्राप्त होता है यथा–

मत्स्यपुराण मे वास्तुशास्त्र, अग्निपुराण, वराहपुराण, श्रीमद्भागवत् पुराण, गरूणपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, स्कन्द पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, विष्णु पुराण, देवीभागवत पुराण, भविष्य पुराण, और नारद पुराण। उपर्युक्त पुराणों मे बड़े–बड़े गृहों का, महलों का मन्त्रियों का एवं राजभवनों की व्यवस्था तथा गृहस्वामी की सुरक्षा के हेतु से आन्तरिक एवं बाह्यरूप में वर्णन प्राप्त होता है।

वास्तुशास्त्र का सतत् विकास यहीं पर नहीं रूका अपितु अनवरत निर्बाध गति के साथ प्राचीन काव्य ग्रन्थों में चलता रहा, जिसका उदाहरण वाल्मिकी रामायण एवं महाभारतादि काव्यों मे भगवान राम राज्य के महलों का वर्णन, आकार, प्रकार, ऊचाई, नीचाई, कक्षों की व्यवस्था का विस्तृत रूप से विवेचन उपलब्ध होता है। इसी प्रकार से महाभारत में भी पाण्डवों एवं कौरवों के महलों का वर्णन विस्तृत रूप से वास्तुसम्मत विषयानुगत उल्लेख प्राप्त होते है।

**प्राचीन एवं अर्वाचीन वास्तुशास्त्र काल।**– वास्तुशास्त्र का कालक्रम यहीं पर ही स्थगित नहीं होने वाला था अपितु वैदिककाल से पौराणिककाल एवं साहित्यिक काव्य ग्रन्थों से होता हुआ प्राचीन एवं अर्वाचीन काल से होता हुआ, वर्तमान काल में भी आधुनिक लेखकों द्वारा वास्तु के विषय पर चर्चा, परिचर्चा महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में अध्ययन, अध्यापन एवं व्याख्यान समिनारों के माध्यम से लगभग यत्र–तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होता हुआ दिखाई पड़ता है। प्राचीन एवं अर्वाचीन कालखण्ड में अनेकों लेखकों, ऋषियों महर्षियों द्वारा कई ग्रन्थ वास्तुविषय पर लिखे गये है। यथा– विश्वकर्मा प्रकाश, मयमतम्, वृहत्संहिता, मानसार, समराङ्गण–सूत्रधार, अपराजितपृच्छासूत्र, जयपृच्छ, प्रमाणमञ्जरी, वास्तुसूत्रोपनिषद, वास्तुराज वल्लभ, वास्तुरत्नाकर, प्रासाद मण्डन, वास्तुमण्डन, कोदण्ड मण्डन, शिल्परत्न, वास्तु सौख्यम्, वास्तु सारिणी, वास्तुमाणिक्य रत्नाकर, वास्तुसार, वास्तु प्रदीप, वास्तु रत्नावली आदि प्रमुख वास्तुशास्त्र के ग्रंथ जिनमें वास्तुविषयक ज्ञान का भण्डार निहित है। इसलिए वास्तुशास्त्र का अर्थ एवं उत्पत्ति का आधार उपर्युक्त ग्रथों में निहित है।

### 1.3.2 वैदिककालीन वास्तुशास्त्र

भारत एक ऐसा राष्ट्र है जो विश्व के अन्य राष्ट्रों की तुलना में सबसे पृथक है यहां की परम्परायें अत्यन्त प्राचीन हैं। इस विषय में हम पूर्ण ज्ञान प्राचीन वैदिक साहित्य एवं वर्तमानकाल में प्रमाण सिद्ध करने वाली संस्था पुरातत्व विज्ञान के माध्यम से भी

जान सकते हैं। इसी क्रम में सिन्धु नदी जो आज के परिवेश में यह क्षेत्र विभाजन के कारण पाकिस्तान के भाग में चला गया। विभाजन के पूर्व अखण्ड भारत के रूप में यह संस्कृति उस काल खण्ड में कहीं आज से भी ज्यादा पल्लवित एवं पुष्पित तथा सुसज्जित रही होगी जिसका समस्त उल्लेख प्रमाणिकता के साथ पुरातत्व विज्ञान के पास आज भी व्यवस्थित है। यह प्राचीन संस्कृति का काल ईसा से 3 हजार वर्ष पूर्व माना जाता है। उतने प्राचीन काल में वास्तु, मुर्तिकला, स्थापत्यकला आदि भौतिक कलायें विद्यमान थी। वर्तमान सुसभ्य राष्ट्र आज जिन कलाओं के विषय में जानते हैं जिसमें, वास्तुकला, मुर्तिकला, चित्रकला, भाण्ड निर्माणकला, संगीत, नाट्यकला, आदि वैदिक युग में प्रसिद्ध थी। इन कलाओं के विषय में विभिन्न सन्दर्भों के उल्लेखों से यह ज्ञात होता है।

वैदिक काल में वास्तुविद्या अपने विकसित रूप में थी। वेदों में **ब्राह्मण** ग्रन्थों में तथा उपनिषदों में वास्तुविद्या से सम्बन्धित अनेकों शब्द इस विषय के साक्षी के रूप में विद्यमान है। उदाहरण के रूप मे **"स्कम्भ"** घरों की छत आदि को टिकाने वाले स्तम्भ, इन्द्र का स्कमीयान अर्थात् सर्वश्रेष्ठ स्तम्भ या खम्बे का स्वामी कहा जाता है। घर के भिन्न–भिन्न भागों को खम्भों पर टिकाते थे जिनको स्तम्भ कहा जाता है। एक मन्त्र में मजबूत आधार पर स्थापित किये गये तीन खम्भों का वर्णन उपलब्ध होता है। उसके ऊपर तिकोना या ढोलकाकार छतें बनाई जाती थी। स्तम्भ की नीव को अरूण के नाम से जाना जाता था।

वैदिक वास्तु विन्यास में भवन अथवा घर के पर्याय के रूप में कई शब्दों का प्रयोग हुआ। जैसे गृह, **हर्म्य**, सदन, हम, दुरोण, अस्त, शरण, तथा पस्त्या आदि। वैदिक कालीन धर में चार प्रमुख भाग होते थे। प्रथम भाग सामने के आंगन सहित गृह, द्वार दूसरा भाग सदस्य स्थापित बैठक थी जिसे सभा या कालान्तर में आस्थान या मण्डप भी कहा जाता था। राजमहलों का यह वह भाग होता था। घर का तृतीय भाग पत्नी सदन होता था जिसे कालान्तर में अन्तःपुर कहा जाने लगा। गृह का चौथा भाग अग्निशाला या यज्ञशाला कहलाता था जिसमें विभिन्न वैदिक मन्त्रोच्चारण के साथ वैदिक यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे। इस अग्निशाला का नाम अग्निशरण भी कहलाता था जिसे बाद में अग्निशरण के स्थान पर देवग्टह की संज्ञा से उद्‌बोधित किया जाने लगा। गृह निर्माण छोटे या बड़े सभी रूपों में किया जाता था। बड़े गृह को **"बृहन्तमानवरूण स्वधावः"** तथा छोटे गृह को शाला कहते थे। अथर्ववेद में दो शाला सूक्तों में घर के अन्य भागों का वर्णन उपलब्ध होता है।

वैदिककाल में लोग वधु को अपने घर की लक्ष्मी समझकर मान सम्मान करते थे। इसलिए उस युग में जब कोई गृहपति घर का निर्माण करवाता था तो उसके मन मस्तिष्क में यही होता था कि यह शाला गोमती, अश्वावती, पयस्वती, घृतवती, ऊर्जस्वती और **सुनृतावती** बनकर मेरे लिए महान कल्याणकारी बनकर सौभाग्य को प्रदान करने वाली होगी।

**सदैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽवावती गोमती सूनृतावती।**
**ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्य महते सौभगाय।।**

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार घर के दो भाग होते थे। एक पूवार्ध या सैदस् जिसे कहते थे जहां पर पुरूषों का उठना बैठना रहता था। इसी सदस् से एक स्तम्भ खड़ा किया

जाता था जिसे वरसिष्ठ स्थूणाराज का नाम दिया गया है। घर के पृष्ठ भाग में पत्नीसदन या अन्तःपुर बनाया जाता था। इसका निर्माण प्रायः बराबर लम्बाई–चौड़ाई में किया जाता था। जैसे सुन्दर स्त्री वरीयसी अथवा पृथुश्रोणि होती है उसी प्रकार इस शाला के उत्तरार्ध भाग को भी बनाया जाता था। इस विषय में शतपथ ब्राह्मण में कुछ ऐसे प्रकार से उल्लेख प्राप्त होता है। **"अथ यत् पश्चात् वरीयसी भवति। वरीयसी पृथुश्रोणि वै येषां प्रशंसन्ति"।**

घर की नीवं को ध्रुवा कहा जाता था। वह बहुत पक्की होती थी नीव पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि गृह निर्माण कला के समस्त मूल तत्व वैदिककाल में विद्यमान थे।

**अथर्ववेद एवं शुल्व सूत्रों में वास्तु विवरण।**– वास्तु से सम्बन्धित सर्वाधिक प्रमाणित सिद्धान्त एवं निर्माण विधियों का उल्लेख सर्वाधिक अथर्ववेद में उपलब्ध होते हैं। इसमें स्तम्भरचना विधि, उन स्तम्भों पर आश्रित के रूप में वलियों को स्थापित करके शहतीरों को जोड़ने के उपरान्त घास डालकर छाने का कार्य या ढककर ढलानदार बाहरी घास–फूस की छत निर्माण के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इससें भवन की वैदिक गोष्ठी शाला, भण्डार गृह, अन्तःपुर, यज्ञशाला, तथा अतिथि गृह जैसे घर के महत्वपूर्ण भागों का स्पष्ट उल्लेख होता है।

यज्ञ–यागादि विविध धार्मिक अनुष्ठानों के लिए आवश्यक यज्ञवेदियों के विभिन्न रूपों की निर्माण विधियों का उल्लेख प्राप्त होता है। गृह निर्माण मे ईटों की लम्बाई–चौड़ाई का परिमाप विभिन्न स्तरों पर विभाजन किस प्रकार से करना चाहिए। इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं। बौधायन तथा आपस्तम्भ सूत्रों में श्मेनचित्, कंकचित् एवं द्रोणचित आदि की निर्माण विधियों का सूक्ष्म विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है।

**वैदिक साहित्य एवं पौराणिक साहित्य में वास्तु।**– भारतीय संस्कृति के मूल आधार वेद है। आज भारत में जो संस्कृति दृष्टिगोचर होती है वह सब वेदों की देन है और वेदों को विश्व का सबसे प्राचीन पुस्तक होने का श्रेय प्राप्त है। अतः इस बात से स्वयं अनुमान लगाया जा सकता है, इस विषय को प्रमाणित करने की आवश्यकता पर बल देना मूर्खता होगी। यह भी सर्वविदित है कि वेद चार है **ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद** और **अथर्ववेद** चारों वेद के चार उपवेद है। जैसे ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का स्थापाव्य वेद और अर्थवेद आदि पाँचों उपवेद माने गये हैं। वेदों का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक कालीन चिन्तनधारा बहुमुखी रही होगी क्योंकि धर्म संस्कृति, राजनीति, संगीत, साहित्य, चित्रकला, शिल्प एवं वास्तुविद्या अथवा स्थापत्य कला में पूर्वरूप से विकसित थी। आधुनिक विज्ञान ने जीवन को शान्तिमय एवं सुखमय बनाने के लिए विविध आयाम **उपस्थापित** किये जिनमें प्रमुख गृह निर्माण है। ऋग्वेद के समय में वास्तुविद्या पूर्णरूप से विकसित थी। दुर्ग–प्रासाद और भवनों का उल्लेख किया गया है समृद्ध एवं सुसम्पन लोग दुर्गों, भवनों एवं प्रासादों में रहते थें, ये पत्थरों से निर्मित होते थे तथा चित्रकारी इनके ऊपर अंकित रहती थी कहा गया है कि विविध प्रकार के भवन महल लोहस्तम्भ, गृह **हर्म्य** आदि का वर्णन उपलब्ध होता है। वैदिक युग में धर्म से सम्बन्धित यज्ञ–अनुष्ठान के लिए कुण्ड मण्डप, से यज्ञवेदियों, यज्ञशालाओं, मठों मन्दिरों का वर्णन उपलब्ध होता है। समय की गतिधारा के अनुसार उत्तरोत्तर इस वास्तुविद्या का विकास आगे चलकर स्थापत्यवेद, पुराण, एवं वास्तु के अन्य ग्रंथों के रूप में परिलक्षित हुआ।

पौराणिक साहित्य का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि अठारह पुरणों में लगभग आधे से ज्यादा में वास्तुविद्या का वर्णन उपलब्ध होता है। जैसे मतस्यपुराण, गरूडपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, इत्यादि।

## 1.4 सारांश

वैदिक काल में गृह निर्माण की कला एवं स्थापत्य के विषय मे आपने इस इकाई में अध्ययन किया। वस्तुतः वैदिक काल मे ंहम कहीं ज्यादा समुन्नत थे। वेदकाल में घासफूस की झोंपड़ी से लेकर हर्म्य, महल, राज–दरबार तक का उल्लेख प्राप्त होता है। यहां तक कि सिन्धु घाटी की सभ्यता जो कि ईसा से 3000 वर्ष पूर्व, की स्थिति मे ंहम पूर्ण रूप से विकसित थे। वेद में वास्तुशास्त्र के विषय में उल्लेख प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रथों में उपनिषदों में ऋग्वेदादि में **"स्कम्भ"** शब्द का प्रयोग हुआ है। इन्द्र को स्कभीयान अर्थात् सर्वश्रेष्ठ स्तम्भ का स्वामी कहा जाता था। घर के चार भाग होते थे प्रथम भाग में आंगन सहित द्वितीय भाग सदस या स्थायिका, तीसरा भाग पत्नी सदन कालान्तर में उसे अन्तःपुर कहा जाने लगा। चौथा भाग अग्निशरण भी कहा जाता है बड़े घर को तथा छोटे घर को शाला कहा जाता था। शाला को गोमती, अश्वावती, पयस्वती, घृतवती, ऊर्जस्वती और सुनृतावती बनकर मेरे लिए महान कल्याणकारी बनकर सौभाग्य को प्रदान करने वाली हो ऐसा उल्लेख मिलता है।

## 1.5 शब्दावली

मनोऽनुकूलम् – मन के अनुकूल।

मनःप्रतिकूलम – मन के प्रतिकूल।

इष्टप्राप्तिः – इच्छित वस्तु की प्राप्ति।

अनिष्टपरिहाराय – अनिष्ट का परिहार हो।

स्थापत्य वेद – जिसमें स्थापत्यकला का ज्ञान हो।

वास्तोष्पति – वास्तु के स्वामी।

पुराकाले – प्राचीनकाल में।

कृतयुगे – सतियुग में

महद्भूतं – अत्यधिक बड़ा।

व्याप्यमानम् – व्याप्त।

सकलंम – समस्त

भुवनम् – लोक

सेन्द्रा – इन्द्र सहित।

भयावृताः – भय से आक्रान्त।

क्रोधसन्तप्तैः – क्रोध से आप्त।

अधोवक्त्रं – नीचे की ओर मुख।

कल्पित्वान – निर्मित किया।

परगेहकृताः – दूसरे के धर में किये गये।

श्रौतस्मार्त क्रिया – श्रुति एवं स्मृति आधारित कर्म।

| | | |
|---|---|---|
| निष्फलाः | — | फल रहित। |
| भूमीशः | — | भूमि का स्वामी। |
| फलमश्नुते | — | फल की प्राप्ति करना। |
| कोटिघ्नं | — | करोंड़ो गुणा। |
| तृणजे | — | तिनके के द्वारा। |
| मृण्मये | — | मिट्टी युक्त। |
| दसङ्गृणम् | — | दस गुणा। |
| शतकोटिघ्नम् | — | सौ करोड़ गुणा। |
| शैल | — | पत्थर। |
| रम्याम् | — | भूमि पर। |
| स्वधया | — | स्वधा के द्वारा। |
| पुत्रोऽहम् | — | मैं पुत्र हूँ। |
| हव्यम् | — | देव आहुति। |
| जरद् | — | बुड़ापा। |
| जगतस्थुषश्च | — | जगत में स्थित। |
| चक्षुर्मित्रस्य | — | मित्र के चक्षु से |
| द्यावापृथिवी | — | दिव लोक तथा पृथ्वी लोक |
| वरूणस्याग्ने | — | वरूण एवं अग्नि देव। |

## 1.6 बोधप्रश्न/अभ्यास प्रश्न

1. वैदिक कालीन वास्तु के ऊपर निबन्ध लिखें।
2. वैदिक काल के गृह निर्माण के विषय में संक्षिप्त विवरण करें।
3. वास्तुशास्त्र की उत्पत्ति एवं स्वरूप को विस्तृतरूप से स्पष्ट करें।
4. दूसरे घर में किये गयें कार्यों के विषय में वास्तुशास्त्रीय मत स्पष्ट करें।
5. वास्तुनिर्माण के फल का प्रतिपादन करें।
6. वेद में भूमि देवी के विषय पर लिखित प्रसंगों का उल्लेख करें।
7. जल तत्व की आवश्यकता पर क्यों बल दिया जाता है। स्पष्ट करें।

## 1.7 सहायक उपयोगी पुस्तकें

1. वृहद्वास्तुमाला– चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के 37/177 गोपाल मन्दिर लेन
2. समराङ्गण सूत्राधार– चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के0 37/117 गोपालमन्दिर लेन
3. भारतीय वास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार मान्यता प्रकाशन 60–C मायाकुंज मायाः दिल्ली
4. ऋग्वेद 4–30–20. 7–5–3, 2–41–5, 7–3–7, 3–43–6
5. मत्स्यपुराण गीताप्रेस गोरखपुर उत्तरप्रदेश।

6. अथर्ववेद गीताप्रेस गोरखपुर उत्तरप्रदेश।
7. शतपथ ब्राह्मंण राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली।
8. राजवल्लभ मण्डन– चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।
9. ज्योति र्निबिन्ध चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।
10. मुहुर्त चिन्तामणि– चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।
11. कल्पद्रुम भूमि लक्षणाध्याय चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY